Volume 2; Issue 3
July to September 2025

E-ISSN: 3048-6742

Sanskriti-Samvahika
संस्कृति-संवाहिका

Peer Review Indexed Refereed Journal

Quarterly Journal

Editor-in-Chief

Dr. Ashwini Devi

Sanskriti-Samvahika संस्कृति-संवाहिका

E-ISSN: 3048-6742

https://sanskritisamvahika.in

Volume 2; Issue 3; July to September, 2025; Page No. 1-11

Peer Review, Indexed and Refereed Journal

संस्कृत ग्रंथों में वर्णित पर्वत, नदियाँ और वन

श्रीमती सोनल

सहायक–आचार्य

डॉ. निहाल सिंह

आचार्य

एम.एस.जे. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर (राज.)

शोध सारांश

भारतीय ज्ञान परम्परा में संस्कृति और साहित्य परस्पर घनिष्ठ रूप में हैं। संस्कृत साहित्य तो भारतीय सभ्यता की आत्मा के संवाहक रूप में है। इस साहित्य में जहाँ मानव–जीवन के विविध पक्षों का व्यापक चित्रण है, वहीं प्रकृति विशेषतः पर्वत, नदियाँ, वनादि स्थलीय तत्वों का वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली रूप में मिलता है। प्रकृति और मानव का सम्बन्ध उतना ही पुराना है जितना कि सृष्टि के उद्भव और विकास का इतिहास पुराना है। प्रकृति की गोद में ही प्रथम मानव शिशु ने आँखें खोली थीं, उसी की गोद में खेलकर बड़ा हुआ है, इसीलिए मानव और प्रकृति के अटूट सम्बन्ध की अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन साहित्य और कला से चिरकाल से होती रही है। साहित्य मानव जीवन का प्रतिबिम्ब है, काव्यात्मक परिकल्पना के आदिम स्फुरण में भी जिन भौतिक या आधिभौतिक तत्त्वों ने प्रेरणा प्रदान की, उनमें प्रकृति के मोहक अथवा विस्मयकारी रूपों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। अतः इस प्रतिबिम्ब में उसकी सहचरी प्रकृति का प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक ही है। प्रकृति के इन प्राकृतिक रूपों का चित्रण केवल भौगोलिक या सजावटी नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं प्रतीकात्मक स्तर पर भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

मुख्य शब्द: संस्कृत ग्रंथों, पर्वत, नदियाँ और वन

भारतीय ज्ञान परम्परा में संस्कृति और साहित्य परस्पर घनिष्ठ रूप में हैं। संस्कृत साहित्य तो भारतीय सभ्यता की आत्मा के संवाहक रूप में है। इस साहित्य में जहाँ मानव–जीवन के विविध पक्षों का व्यापक चित्रण है, वहीं प्रकृति विशेषतः पर्वत, नदियाँ, वनादि स्थलीय तत्वों का वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली रूप में मिलता है। प्रकृति और मानव का सम्बन्ध उतना ही पुराना है जितना कि सृष्टि के उद्‌भव और विकास का इतिहास पुराना है। प्रकृति की गोद में ही प्रथम मानव शिशु ने आँखें खोली थीं, उसी की गोद में खेलकर बड़ा हुआ है, इसीलिए मानव और प्रकृति के अटूट सम्बन्ध की अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन साहित्य और कला से चिरकाल से होती रही है। साहित्य मानव जीवन का प्रतिबिम्ब है, काव्यात्मक परिकल्पना के आदिम स्फुरण में भी जिन भौतिक या आधिभौतिक तत्त्वों ने प्रेरणा प्रदान की, उनमें प्रकृति के मोहक अथवा विस्मयकारी रूपों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। अतः इस प्रतिबिम्ब में उसकी सहचरी प्रकृति का प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक ही है। प्रकृति के इन प्राकृतिक रूपों का चित्रण केवल भौगोलिक या सजावटी नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं प्रतीकात्मक स्तर पर भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

काव्य में प्रकृति का वर्णन कई प्रकार से प्राप्त होता है जैसे उद्दीपन, आलम्बन, मानवीकरण, दूती, बिम्ब–प्रतिबिम्ब आदि। अनादिकाल से ही कविगण भाव–विभोर होकर प्रकृति–रूपसी की मन–मोहिनी छवियों को अनेक तरीकों से तराशते चले आ रहे हैं। प्रकृति प्रेमी अपने लेखन के माध्यम से प्रकृति के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करते हैं। मानवजीवन स्वयं भी तो प्रकृति के विशाल जीवन का ही अभिन्न अंग है तथा प्रकृति ने स्वयं ही अपने प्रतिबिम्बों को हृदय के विविध भावों के रूप में मूर्त्त कराया है। क्रान्तदर्शी ऋषियों की दृष्टि सर्वप्रथम प्रकृति के अनन्त में विस्मय तथा रहस्यमयी सौन्दर्य बिम्बों पर टिकती है। अनन्तर उन्हें मानवीकरण या दैवीकरण के प्रकृष्ट कलात्मक सांचे में ढालती है। वेदों में उसके विस्मय विमुग्धकारी रूप वेल–बूटों की तरह सज्जित हैं तो लौकिक संस्कृत में आदिकवि वाल्मीकि ने भी कविदृष्टि से प्रकृति का दर्शन कराया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में पर्वतों और नदियों का स्तुतिपरक वर्णन भी प्राप्त होता है। सरस्वती, सिन्धु, यमुना आदि नदियों को देवतुल्य सम्मान प्राप्त है। पर्वतों को स्थायित्व और महानता का प्रतीक माना गया है, जैसे हिमवन, मेरुपर्वत इत्यादि। वनों को औषधियों, पशुपालन और तपस्या के केंद्र के रूप में वर्णित किया गया है। ऋग्वेद में गृहत्समद ऋषि द्वारा सरस्वती देवी की स्तुति का एक उद्धरण प्रस्तुत है –

"अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति, अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।"[1]

भारतीय संस्कृति प्रकृति की गोद में वनों से ढके हुए तपोवन एवं आश्रमों में ही विकसित हुई। जहाँ भविष्यद्रष्टा ऋषि मन्त्रों के माध्यम से पर्यावरण की शुद्धि के लिए प्रार्थना किया करते थे–

ऊँ द्यौ शान्तिरन्तरिक्षः शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः

शान्तिरौषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः।[2]

वेदों से ही हमें प्रकृति चित्रण की सुदृढ़ परम्परा प्राप्त होती है। जहां उषा, सूर्य, मरुत, इंद्र आदि को अलौकिक शक्तियों के रूप में स्वीकार करते हुए, उनके मानवी–क्रिया–कलापों का चित्रण किया गया है। कुमारी बाला रूप में उषा की कल्पना करते हुए सूर्य को उसका प्रेमी बताया गया है। पुरुरवा को छोड़कर जाती हुई कांतिमती उर्वशी के सौन्दर्य को भी मेघों को चीरकर जाती हुई बिजली के सदृश बताया गया है। मंडूक सूक्त में वर्षा के आगमन और मेढ़कों पर उसके आह्लादकारी प्रभाव का बहुत ही सुंदर वर्णन किया गया है। जल की बूंदों से प्रसन्न हो क्रीड़ा–मग्न मेंढक परस्पर बधाई भी देते प्रतीत होते हैं।[3]

संसार के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में प्रकृति के प्रति कृतज्ञता और श्रद्धा के भाव यथास्थान वर्णित पाये जाते हैं। इस वेद में सरस्वती, सिन्धु, यमुना आदि नदियाँ जलप्रवाह के स्रोत के रूप में ही दिखाई नहीं देती बल्कि ये नदियाँ ऋग्वेद में देवियों के रूप में वर्णित होकर जनमानस में विराजमान हैं। **'सरस्वती सरसां अपः।'** सरस्वती को जलों की अधिष्ठात्री कहा गया है। पर्वत की बात करें तो वेदों में हिमालय, विन्ध्याचल जैसे पर्वतीय स्थलों के संकेत भी मिलते हैं। वे स्तुति के पात्र हैं– **'गिरयः सम्राजः।'** वनों को जीवनदायिनी, औषधीय एवं तपस्या के स्थान के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है।

महाकाव्यों में भी प्रकृति के अभिन्नतम तत्वों का चित्रण प्रायः प्राप्त होता है। रामायण में इन्हें मानवीय भावों या जीवन परिस्थितियों के उद्दीपक के रूप में लिया गया है। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य स्थलीय तत्वों के उत्कृष्ट चित्रों से युक्त हैं। रामायण में राम के वनवास और संघर्ष के प्रतीक के रूप में दण्डकारण्य, चित्रकूट, पंचवटी जैसे वनप्रांतों का अत्यंत जीवन्त वर्णन है। गंगा, सीता–हरण की साक्षी गोदावरी नदी, सरयू आदि नदियाँ पात्रों के जीवन में आध्यात्मिक तथा भावनात्मक भूमिका निभाती हैं। गंधमादन, ऋष्यमूक, कैलास आदि पर्वत और उन पर स्थित अनेकानेक ऋषियों के आश्रम न केवल स्थान मात्र हैं, बल्कि आध्यात्मिक यात्रा एवं आत्मिक विकास के केंद्र के प्रतीक भी हैं। गंगा भीष्म की उत्पत्ति एवं अंतिम यात्रा का माध्यम बनती है। महाभारत में भी हिमालय, गंधमादन, सप्तश्रृंग पर्वत आध्यात्मिक आरोहण के प्रतीक हैं।

महाकवि कालिदास जैसे अनेक अग्रगण्य कवियों द्वारा अपने–अपने काव्य एवं सृजित साहित्य में प्रकृति की वर्णना को स्थान दिया गया है। कालिदास ने कल्पना या सादृश्य विधान का चित्रण ही प्रकृति के इन तत्त्वों के सहारे किया है। भारवि, माघ, बाणभट्ट, श्रीहर्ष आदि कवि संस्कृत की किसी भी शाखा से सम्बद्ध रहे हों, सभी ने अपने–अपने ढंग से प्रकृति को वर्णित किया है। इनके काव्य में

पर्वत, नदियाँ और वन नायक–नायिका की भावनाओं के सहचर हैं। मेघदूत में रामगिरि पर्वत का और विविध नदियों का अत्यन्त ही चित्रात्मक एवं भावनात्मक वर्णन किया गया है। ऋतुसंहार में ऋतु–अनुसार वनों की बदलती छवि और सौंदर्य को दर्शाया गया है। कुमारसंभवम् में पर्वत की सांस्कृतिक महत्ता हिमालय की दिव्यता और पार्वती के तप के वर्णन से प्रदर्शित होती है। इस महाकाव्य में हिमालय पर्वत को 'नगाधिराज' कहा गया है –

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।"[4]

प्रकृति के चित्रण में कवियों को प्रकृति के मधुर व कमनीय रूपों के प्रेमी के रूप में पाया गया हैं। यहां महाकवि भवभूति की दृष्टि कुछ नूतनता लिए हुए है। इन्हें पर्वत, नदियों एवं वनों के विकट, भयावह व उग्ररूपों से अनुराग है। महाकवि कालिदास के ऋतुसंहार और मेघदूत में प्रकृति चित्रण की जैसी भेदप्रतीति दिखाई देती है, वैसी इनकी किसी भी नाट्यकृति में प्रकृति–चित्रण की दृष्टि से कोई भेदप्रतीति स्पष्ट नहीं होती है। मेघदूतम् में रामगिरि पर्वत, मंदाकिनी नदी, और पुष्पवाटिकाओं का चित्रण नायक की विरहवेदना का संवाहक बनता है। ऋतुसंहार में वनों और पर्वतीय प्रदेशों का ऋतु–अनुसार चित्रात्मक वर्णन भी अपनी कलात्मकता के सुप्रसिद्ध उद्धरण के रूप में है। महावीरचरित में विद्यमान इनकी कलात्मक दृष्टि से किसी प्रकार की न्यूनता नहीं मिलती है, बल्कि वस्तु, भाव के साथ प्रकृति का सामंजस्य मिलता है–

गर्जाजर्जरितासु दिक्षु बधिरे तत्स्फूर्जथुस्फूर्जितै–
व्योम्नि भ्राम्यति दुष्प्रभंजनजवादभ्रेऽप्यदभ्रे मुहुः।
आक्षिप्यान्धयति द्रुमान्धतमसे चक्षुः प्रविश्य क्षपा
यत्रासीत्क्षपिता क्षरज्जलधरे त्वक्सारलक्षीकृते।।[5]

उक्त श्लोक में लक्ष्मण ने दण्डकारण्य में आकाशमार्ग से दिखाई देने वाले बांसों के झुरमुट से संलग्न उस जीर्ण कन्दरा की ओर राम का ध्यान आकृष्ट किया है, जहाँ सीता विरहित होकर उन दोनों ने बिजली की कडक, मेघाच्छन्न आकाश के भयंकर गर्जन, सघन वृक्षों द्वारा आपातित सूचीभेद्य अन्धकार तथा निरन्तर बरसते मेघों से युक्त एक रात व्यतीत की थी। सीता जी के बिछुडने के पश्चात् राम के प्राणों में जो तूफान समाया था, उनके भीतर और बाहर जो आकुलता, सघन आर्द्रता एवं अन्धकार घिर आये थे, उन सबका जीवन्त प्रतिनिधित्व करने वाला प्रस्तुत श्लोक भवभूति की विराट् एवं संवेदनशील प्रकृति का एक सुन्दर निदर्शन है। यहाँ कन्दरा का सूनापन प्रकृति के उस क्षोभ के चित्रों से और भी घनीभूत हुआ सा लगता है, राम के संतप्त हृदय की मूक एव अमूर्त ज्वालाएँ सदेह होकर प्रकृति के विराट् स्वरूप में प्रतिध्वनित होती हुई सी प्रतीत होती हैं। स्पष्ट है

कि यहाँ राम या सीता के किसी भाव विशेष का आरोप प्रकृति पर नहीं किया गया है– प्रकृति की कल्पना उनके जीवन से सर्वथा स्वतन्त्र की गई है। फिर भी मानो वह राम के विषाद एवं विरह शोक के समास में स्थित है, राम के प्रति सहानुभूति एवं प्रीति के मधुर भाव संजोए हुई है। राम अपनी चिन्ता, व्याकुलता एवं आँसुओं में अकेले नहीं है; उसके आस–पास का प्रकृति–जगत् भी उनके शोक से उद्विग्न एवं तरल होकर मानो उनके प्रिया विरहित जीवन का संवेदनशील मित्र है।

उत्तररामचरितम् के द्वितीय अंक की समर्थ पार्श्वभूमि के रूप में दण्डकारण्य की प्रकृति की मानवभावों के साथ उपयुक्त संगति देखी जा सकती है। शम्बूक को दण्डित करने के क्रम में राम अनजाने में ही प्रकृति की उस रमणीय लीलाभूमि में प्रवेश कर सुपरिचित नदी, निर्झर, पर्वत आदि का पुनः साक्षात्कार करते हैं –

स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणाभोगरुक्षाः,
स्थाने–स्थाने मुखरककुभो झांकृतैर्निर्झराणाम्।
एते तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्राः
सन्दृश्यन्ते परिचितभुवो दण्डकारण्यभागाः।।[6]

महाकवि कालिदास प्रकृति के उपासक हैं। उन्होंने अन्तःप्रकृति एवं बाह्यप्रकृति दोनों का चित्रण किया है। प्रकृति का सुकुमार रूप उन्हें अधिक प्रिय है। कालिदास ने अपने समस्त काव्यों एवं नाटकों में प्रकृति के उत्तमोत्तम दृश्यों का निरुपण किया है। ''ऋतुसंहार" में विभिन्न ऋतुओं से मानवों पर पड़ने वाले प्रभावों का तथा उनके परिणामों का सुन्दर सरस वर्णन है। मेघदूत में यक्ष जब स्वप्न में अपनी पत्नी का दर्शन कर बड़ी उत्सुकतापूर्वक उसका आलिङ्गन करने के लिए अपनी भुजायें फैलाते हैं तब उसकी इस विवशता को देखकर वन–देवियों की आँखों से मोतियों के समान स्थूल अश्रुबिन्दु वृक्षों के पत्तों पर गिरने लगते हैं।

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरःकौतुकाधानहेतोरन्तर्वाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।[7]

कुमारसंभव में कवि ने प्राकृतिक और दैवी विभूतियों के बीच अद्भुत साम्य स्थापित किया है। वस्तुतः प्रकृति का आलम्बन रूप यहाँ देखने को मिलता है। इस प्रकार ऋतु संहार का कवि यद्यपि प्रकृति–प्रेमी है तथापि यहाँ उसका यह प्रकृति–प्रेम प्रायः उद्दीपन का ही साधन है।

कविमत है कि मानव सौन्दर्य से बढ़कर प्रकृति–सौन्दर्य है। मानव सौन्दर्य की अभिवृद्धि के मूल में प्रकृति–सौन्दर्य ही होता है। इसीलिये उसने शकुन्तला के सौन्दर्य वर्णन में सर्वत्र प्राकृतिक उपमानों का ही उपयोग किया है–

"अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहैरनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।

अखण्डपुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।"[8]

इसी प्रकार राजा दुष्यन्त अभिज्ञानशकुन्तलम् के षष्ठांक में भ्रमर को सम्बोधित कर कहते हैं कि–

"अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु।

बिम्बाधरं स्पृशसि चेद् भ्रमर प्रियायाः, त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्।।[9]

यदि तू मेरी अवज्ञा करेगा तो तेरे लिये यह राजदण्ड होगा और तुझे कमल के अन्दर ही बन्द करा दूंगा, अगर तू मेरी प्रिया के न मुर्झाये हुये नवीन तरुपल्लव के समान सुन्दर उस बिम्बतुल्य अधरोष्ठ का स्पर्श करेगा।

महाकवि कालिदास की प्रकृति कहीं भी मूक, चेतनाहीन नहीं है, वह मानवों के समान ही सचेतन एवं सजीव है। कालिदास की प्रकृति सहानुभूति प्रदर्शन मात्र की ही वस्तु नहीं है बल्कि दुःखीजनों को सान्त्वना भी देती है। पर कदाचित् प्रकृति विरही के विरह को उद्दीप्त भी करती है और प्रकृति सौन्दर्य उसे विपरीत सा दिखाई पड़ने लगता है, इसीलिए विरह पीड़ित दुष्यन्त कहते हैं–

"विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैस्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारी करोषि।।"[10]

वस्तुतः महाकवि कालिदास उत्कृष्ट प्रकृति–प्रेम के प्रकृतिदृश्यों की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति के और उसकी कमनीय कल्पनाओं की उत्प्रेक्षाओं और उपमाओं के सुन्दर चितेरे हैं तथा उन्होंने प्रकृति में एक विलक्षण चेतना के दर्शन किये हैं। कवियों को मानव के दुःख–सुखों की अनुभूति का आभास प्रकृति में भी होता रहा है। यथा–

उद्गलितदर्भकबला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः

अपसृतपाण्डुपत्रा मुंचन्त्यश्रूणीव लताः।।[11]

भारतीय साहित्य में प्रकृति प्रेम के अनगिनत उदाहरण हैं। रविन्द्रनाथ टैगोर द्वारा 'धरा' शीर्षक से अपनी कविता में प्रकट किया गया भाव उनके प्रकृति–प्रेम का अद्वितीय उदाहरण है। इस कविता में वे प्रकृति को अपनी माता के रूप में देखते हैं और उसके सौन्दर्य का गान करते हैं। भारतीय चिन्तन में मानव जगत् में जन्म लेता है, उसका जीवन प्रकृति का ही अंग है। उसकी सौन्दर्य–परिकल्पना प्रकृति से उद्भूत है। कवि मानवीय अंग–प्रत्यंग परिस्थितियों, भावों के सौन्दर्यविधान के लिए प्रकृति के उपकरणों से बिम्ब–योजना करता है।[12] भारवि तथा कुमारदास जैसे कवियों के लिए प्रायः प्रकृति वर्ण्यवस्तु है। उनका आदर्श अपने महाकाव्यों में निर्धारित प्रकृति की

स्थितियों को स्थान देना है और वे उसका वर्णन काव्यात्मक शिल्प और उत्कर्ष की दृष्टि से करते हैं।[13] प्रकृति के रूप और भाव की स्थापना के पश्चात् उसमें मानव की स्थिति समझ लेना आवश्यक है। प्रकृति और काव्य–सम्बन्धी विवेचना में मानव बीच की कड़ी है, क्योंकि मानव जीवन की अभिव्यक्ति है।[14]

पुराणों में भी इन पर्वत, नदियाँ, वन आदि धरातलीय तत्वों की गरिमा को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। स्कन्द, विष्णु, भागवत आदि पुराणों में पर्वतों, नदियों और वनों को दैवी रूप में चित्रित किया गया है। त्रिलोकी–विहारिणी गंगा, जो भगवान शिव की जटाओं से निकली है, मोक्षदायिनी मानी गई है। वनों में स्थित नैमिषारण्य, तपोवन, दण्डकारण्य, मेरु, मंदार, कैलास जैसे पर्वतों पर तपस्वियों के आश्रमों का वर्णन एवं महत्व केवल भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय एवं दैवी सत्ता के प्रतीक हैं। इन पर्वतीय स्थलों पर देव–संवाद, यज्ञ और ज्ञानविस्तार हुआ करते थे। सप्तर्षि पर्वत, गन्धमादन, मेरु आदि पर्वत ब्रह्मांडीय संरचना के भाग माने जाते हैं। प्रतीकात्मक व सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी इन धरातलीय तत्वों का पृथ्वी पर कम महत्व नहीं है। पर्वत स्थिरता, आत्मसंयम और तपस्या के प्रतीक हैं। नदियाँ प्रवाह, करुणा और जीवन–चक्र का प्रतिनिधित्व करती हैं। वन एक ओर संसारी जीवन से विरक्ति तो दूसरी ओर औषधि और जीवनदायिनी शक्ति का रूप हैं।

साहित्य में पर्वत, नदियाँ और वन केवल प्राकृतिक तत्व नहीं, अपितु सांस्कृतिक, दार्शनिक और भावनात्मक चेतना के संवाहक हैं। कवियों और ऋषियों द्वारा अपने–अपने सृजन में इन स्थलीय तत्वों के माध्यम से भारतीय मानस की प्रकृति के साथ एकात्मता को अभिव्यक्त किया गया है। आधुनिक काल में जब पर्यावरण–संरक्षण की आवश्यकता बढ़ती जा रही है, तब संस्कृत साहित्य में वर्णित प्रकृति के प्रति श्रद्धाभाव हमें दिशा प्रदान कर सकता है। भारतीय साहित्य, विशेषतः संस्कृत साहित्य, में प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत पात्र की भाँति चित्रित किया गया है। पर्वत, नदियाँ, वन आदि स्थलीय तत्व प्रकृति के मुख्य आधार हैं, जो वेदों से लेकर महाकाव्यों, नाटकों, पुराणों और काव्यशास्त्रों में विविध रूपों में प्रकट होते हैं। ये तत्व केवल भूगोल तक सीमित नहीं रहते, बल्कि धर्म, दर्शन, जीवनशैली, सौन्दर्यबोध एवं पर्यावरणीय चेतना के वाहक बन जाते हैं।

दार्शनिक दृष्टिकोण से पर्वत, नदियों एवं वन के महत्त्व को निम्नलिखित तालिका से भी समझ सकते हैं –

स्थलीय तत्व	प्रतीकात्मक अर्थ	साहित्यिक प्रस्तुति
पर्वत	स्थिरता, तप, दिव्यता	नगाधिराज हिमालय, गंधमादन
नदियाँ	जीवन, करुणा, मोक्ष	सरस्वती, गंगा, यमुना
वन	शांति, ज्ञान, आश्रय	दण्डकारण्य, पंचवटी, नैमिषारण्य

निष्कर्षतः साहित्य में भी मनुष्य के हृदय की भावनाएँ ही हुआ करती हैं। अतः सभी देशों और भाषाओं के साहित्य में प्रकृति वर्णन का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कवियों द्वारा प्रकृति से सिर्फ प्रेम ही नहीं किया, बल्कि उसके साथ ममत्व भी स्थापित किये गये। प्रकृति के समस्त पदार्थ कवि के रतिभाव के स्वतंत्र आधार का रूप ग्रहण करके उसकी अन्तःसत्ता पर अपना प्रभाव स्थापित कर काव्य को उत्कृष्ठ बनाते हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि केदारनाथ अग्रवाल ने प्रकृति को आलम्बन रूप में अनुभूत करके अपने काव्य में प्रकृति के संश्लिष्ट और भव्य चित्र को उकेरा है–

देख आया चंद्रग्रहना, देखता हूँ दृश्य,
अब में मेंड पर इस खेत की बैठा अकेला।[15]

कवि को प्रकृति पीली सरसों हाथ में धारण किए हुए मण्डप में पधारी नवविवाहिता के समान प्रतीत हो रही है। प्रकृति को सहचरी मानते हुए कवि उसे कभी माँ, कभी प्रेमिका, तो कभी पितृत्व के अंश के रूप में देखते हैं। कवि अपने साहित्य में अपनी संवेदनापरक दृष्टि से अनूठे बिम्बों को निर्मित करते हुए ग्रामीण जीवन और भारतीय संस्कृति को काव्य में उकेरते हैं–

ये माटी के दिए– मौन, जलते, मुस्कुराते
अन्धकार को भार भगाते पावन पर्व प्रकाश मनाते।।[16]

वेदना–क्षणों में प्रकृति को आश्रय के रूप में देखते हुए कवि प्रकृति की शरण में जाते हैं। उनका मत है कि अवसाद के क्षणों में प्रकृति शीतल लेप का कार्य कर मन को सुखद अनुभूति प्रदान करती है। प्रकृति प्रदत्त हरियाली को देखकर कवि में जीवन का संचार सा होता है।

''यह हरियाली है मुझको प्रिय है, यही मुझे करती है प्रमुदित, यही मुझे रखती है जीवित।।[17]

हमारे भारतीय साहित्य और संस्कृति समृद्ध इतिहास और विविधता वाले भू–भौतिक दृश्य जीवन और प्राकृतिक परिसर्जना को साक्षात् जीवन्त करते हैं, यही कारण है कि प्रकृति ही हमारे जीवन का आदिकाव्य है जिसका साहित्य के साथ घनिष्ठतम सम्बन्ध है। इस प्रकार भारतीय साहित्य संस्कृति में प्रकृति प्रेम न केवल एक भावना है बल्कि वह हमारी साहित्यिक संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। संस्कृत साहित्य में स्थलीय तत्वों का चित्रण केवल सौंदर्यबोध या वर्णनात्मक नहीं है, बल्कि वह जीवनदर्शन, आध्यात्मिकता, पर्यावरणीय चेतना और सांस्कृतिक मूल्यों से समृद्ध है। पर्वत, नदियाँ, वन आदि न केवल स्थलों के रूप में चित्रित हैं, बल्कि वे भारतीय मानस की आस्था, करुणा और शाश्वतता के प्रतीक बनकर उभरते हैं। इन्हें पूजनीय मानने से प्रकृति के संरक्षण की भावना उत्पन्न होती है। आज के संदर्भ में, जब पर्यावरणीय संतुलन डगमगा रहा है, संस्कृत साहित्य की यह प्रकृति–प्रेम रूपा दृष्टि एक अनुकरणीय

प्रेरणा बन सकती है। आज की पर्यावरणीय संकट से जूझते विश्व के लिए संस्कृत साहित्य मार्गदर्शक बन सकता है।

सन्दर्भसूची –

1. ऋग्वेद, 2.41.6 मैक्समूलर संस्करण, भारतीय विद्या संस्थान।
2. काण्व संहिता – 36.17
3. ऋग्वेद, 7/103/4
4. कुमारसंभवम् – 1.1 डॉ. रामचन्द्र वर्मा शास्त्री, मनोज पब्लिकेशंस, दिल्ली।
5. महावीरचरितम् – 7.12
6. उत्तररामचरितम् – 2.14 डॉ. बाबूराम त्रिपाठी, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा।
7. मेघदूत – पूर्वमेघ/3 डॉ. विजेन्द्र कुमार शर्मा, साहित्य भण्डार, मेरठ (उ0प्र0)।
8. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 2.10 डॉ. यशवन्त जोशी, कमल बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, उदयपुर।
9. तत्रैव 6.20
10. तत्रैव 3.3
11. तत्रैव 4.12
12. प्रकृति और काव्य ; संस्कृत साहित्य में प्रकृति परिकल्पना रघुवंश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
13. तत्रैव
14. तत्रैव
15. केदारनाथ अग्रवाल, ''युग की गंगा'' प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
16. केदारनाथ अग्रवाल, ''पुष्पदीप'', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (2016)।
17. केदारनाथ अग्रवाल, ''पंख और पतवार'' साहित्य भण्डार, इलाहाबाद–3 (2009)

अन्य सहायक ग्रन्थ सूची

वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस गोरखपुर संस्करण।

महाभारत, विमलनाथ शास्त्री सम्पादित, चौखम्बा प्रकाशन।

महाराजासूरजमलचरितम् – डॉ. निहाल सिंह इमलिया, वाची प्रकाशन, नई दिल्ली।

ऋतुसंहार– कालिदास, संपादन, डॉ. भवानीशंकर त्रिपाठी।

विष्णुपुराण, स्कन्दपुराण – मोतीलाल बनारसीदास संस्करण।

भारतीय साहित्य में पर्यावरण चेतना – डॉ. सत्यव्रत शर्मा, साहित्य अकादमी।
भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त – डॉ. निहाल सिंह एवं श्रीमती डिम्पल जैसवाल, मधुशाला प्रकाशन, भरतपुर (राज.)।